रामविलास शर्मा

(सन् 1912–2000)

रामविलास शर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव ज़िले के ऊँचगाँव-सानी गाँव में हुआ था। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. तथा पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। पीएच.डी. करने के उपरांत उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में ही कुछ समय तक अंग्रेज़ी विभाग में अध्यापन कार्य किया। सन् 1943 से 1971 तक वे आगरा के बलवंत राजपूत कालेज में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक रहे। 1971 के बाद कुछ समय तक वे आगरा के ही के.एम. मुंशी विद्यापीठ के निदेशक रहे। जीवन के आखिरी वर्षों में वे दिल्ली में रहकर साहित्य समाज और इतिहास से संबंधित चिंतन और लेखन करते रहे और यहीं उनका देहावसान हुआ।

रामविलास शर्मा आलोचक, भाषाशास्त्री, समाजचिंतक और इतिहासवेत्ता रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने कवि और आलोचक के रूप में पदार्पण किया। उनकी कुछ कविताएँ अज्ञेय द्वारा संपादित ***तार सप्तक*** *में संकलित हैं। हिंदी की प्रगतिशील आलोचना को सुव्यवस्थित करने और उसे नयी दिशा देने का महत्त्वपूर्ण काम उन्होंने किया। उनके साहित्य-चिंतन के केंद्र में भारतीय समाज का जनजीवन, उसकी समस्याएँ और उसकी आकांक्षाएँ रही हैं। उन्होंने वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति के काव्य का नया मूल्यांकन और तुलसीदास के महत्त्व का विवेचन भी किया है।*

रामविलास शर्मा ने आधुनिक हिंदी साहित्य का विवेचन और मूल्यांकन करते हुए हिंदी की प्रगतिशील आलोचना का मार्गदर्शन किया। अपने जीवन के आखिरी दिनों में वे भारतीय समाज, संस्कृति और इतिहास की समस्याओं पर गंभीर चिंतन और लेखन करते हुए वर्तमान भारतीय समाज की समस्याओं को समझने के लिए, अतीत की विवेक-यात्रा करते रहे।

महत्त्वपूर्ण विचारक और आलोचक के साथ-साथ रामविलास जी एक सफल निबंधकार भी हैं। उनके अधिकांश निबंध ***विराम चिह्न*** *नाम की पुस्तक में संगृहीत हैं। उन्होंने विचारप्रधान और व्यक्ति व्यंजक निबंधों की रचना की है। प्राय: उनके निबंधों में विचार और भाषा के स्तर पर एक रचनाकार की जीवंतता और सहृदयता मिलती है। स्पष्ट कथन, विचार की गंभीरता और भाषा की सहजता उनकी निबंध-शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं।*

2019-20

© NCERT not to be republished

रामविलास शर्मा को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। **निराला की साहित्य साधना** पुस्तक पर उन्हें **साहित्य अकादमी पुरस्कार** प्राप्त हुआ था। अन्य प्रतिष्ठित पुरस्कारों में **सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार**, उत्तर प्रदेश सरकार का **भारत-भारती पुरस्कार, व्यास सम्मान** और हिंदी अकादमी दिल्ली का **शलाका सम्मान** उल्लेखनीय है। पुरस्कारों के प्रसंग में शर्मा जी के आचरण की एक बात महत्त्वपूर्ण है कि वे पुरस्कारों के माध्यम से प्राप्त होने वाले सम्मान को तो स्वीकार करते थे लेकिन पुरस्कार की राशि को लोकहित में व्यय करने के लिए लौटा देते थे। उनकी इच्छा थी कि यह राशि जनता को शिक्षित करने के लिए खर्च की जाए।

उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं–**भारतेंदु और उनका युग, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, प्रेमचंद और उनका युग, निराला की साहित्य साधना** (तीन खंड), **भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी** (तीन खंड), **भाषा और समाज, भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद, इतिहास दर्शन, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश** आदि।

यथास्मै रोचते विश्वम् नामक निबंध उनके निबंध संग्रह **विराम चिह्न** से लिया गया है। इसमें उन्होंने कवि की तुलना प्रजापति से करते हुए उसे उसके कर्म के प्रति सचेत किया है। लेखक के अनुसार साहित्य जहाँ एक ओर मनुष्य को मानसिक विश्रांति प्रदान करता है वहीं उसे उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा भी देता है। सामाजिक प्रतिबद्धता साहित्य की कसौटी है। पंद्रहवीं शताब्दी से आज तक के साहित्य के अध्ययन-मूल्यांकन के लिए रामविलास जी ने इसी जनवादी साहित्य चेतना को मान्यता दी है।

© NCERT not to be republished

12072CH19

यथास्मै रोचते विश्वम्

प्रजापति से कवि की तुलना करते हुए किसी ने बहुत ठीक लिखा था—"यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।" कवि को जैसे रुचता है वैसे ही संसार को बदल देता है।

यदि साहित्य समाज का दर्पण होता तो संसार को बदलने की बात न उठती। कवि का काम यथार्थ जीवन को प्रतिबिंबित करना ही होता तो वह प्रजापति का दर्जा न पाता। वास्तव में प्रजापति ने जो समाज बनाया है, उससे असंतुष्ट होकर नया समाज बनाना कविता का जन्मसिद्ध अधिकार है। यूनानी विद्वानों के बारे में कहा जाता है कि वे कला को जीवन की नकल समझते थे और अफ़लातून ने असार संसार को असल की नकल बताकर कला को नकल की नकल कहा था। लेकिन अरस्तू ने ट्रेजेडी के लिए जब कहा था कि उसमें मनुष्य जैसे हैं उससे बढ़कर दिखाए जाते हैं, तब नकल-नवीस कला का खंडन हो गया था और जब वाल्मीकि ने अपने चरित्र-नायक के गुण गिनाकर नारद से पूछा कि ऐसा मनुष्य कौन है? तब नारद ने पहले यही कहा—"बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।" दुर्लभ गुणों को एक ही पात्र में दिखाकर आदि कवि ने समाज को दर्पण में प्रतिबिंबित न किया था वरन् प्रजापति की तरह नयी सृष्टि की थी।

कवि की यह सृष्टि निराधार नहीं होती। हम उसमें अपनी ज्यों की त्यों आकृति भले ही न देखें पर ऐसी आकृति ज़रूर देखते हैं जैसी हमें प्रिय है, जैसी आकृति हम बनाना चाहते हैं। जिन रेखाओं और रंगों से कवि चित्र बनाता है, वे उसके चारों ओर यथार्थ जीवन में बिखरे होते हैं और चमकीले रंग और सुघर रूप ही नहीं, चित्र के पार्श्व भाग में काली छायाएँ भी वह यथार्थ जीवन से ही लेता है। राम के साथ वह रावण का चित्र न खींचें तो गुणवान, वीर्यवान, कृतज्ञ, सत्यवाक्य, दृढ़व्रत, चरित्रवान, दयावान, विद्वान, समर्थ और प्रियदर्शन नायक का चरित्र फीका हो जाए और वास्तव में उसके गुणों के प्रकाशित होने का अवसर ही न आए।

कवि अपनी रुचि के अनुसार जब विश्व को परिवर्तित करता है तो यह भी बताता है कि विश्व से उसे असंतोष क्यों है, वह यह भी बताता है कि विश्व में उसे क्या रुचता है जिसे वह फलता-फूलता देखना चाहता है। उसके चित्र के चमकीले रंग और पार्श्वभूमि की गहरी काली रेखाएँ—दोनों ही यथार्थ जीवन से उत्पन्न होते हैं। इसलिए प्रजापति-कवि गंभीर यथार्थवादी होता है, ऐसा यथार्थवादी जिसके पाँव वर्तमान की धरती पर हैं और आँखें भविष्य के क्षितिज पर लगी हुई हैं। इसलिए मनुष्य साहित्य में अपने सुख-दुख की बात ही नहीं सुनता, वह उसमें आशा का स्वर

© NCERT not to be republished

भी सुनता है। साहित्य थके हुए मनुष्य के लिए विश्रांति ही नहीं है, वह उसे आगे बढ़ने के लिए उत्साहित भी करता है।

यदि समाज में मानव-संबंध वही होते जो कवि चाहता है, तो शायद उसे प्रजापति बनने की ज़रूरत न पड़ती। उसके असंतोष की जड़ ये मानव-संबंध ही हैं। मानव-संबंधों से परे साहित्य नहीं है। कवि जब विधाता पर साहित्य रचता है, तब उसे भी मानव-संबंधों की परिधि में खींच लाता है। इन मानव-संबंधों की दीवाल से ही हैमलेट की कवि सुलभ सहानुभूति टकराती है और शेक्सपियर एक महान ट्रेजेडी की सृष्टि करता है। ऐसे समय जब समाज के बहुसंख्यक लोगों का जीवन इन मानव-संबंधों के पिंजड़े में पंख फड़फड़ाने लगे, सींकचे तोड़कर बाहर उड़ने के लिए आतुर हो उठे, उस समय कवि का प्रजापति रूप और भी स्पष्ट हो उठता है। वह समाज के द्रष्टा और नियामक के मानव-विहग से क्षुब्ध और रुद्धस्वर को वाणी देता है। वह मुक्त गगन के गीत गाकर उस विहग के परों में नयी शक्ति भर देता है। साहित्य जीवन का प्रतिबिंबित रहकर उसे समेटने, संगठित करने और उसे परिवर्तन करने का अजेय अस्त्र बन जाता है।

पंद्रहवीं-सोहलवीं सदी में हिंदी-साहित्य ने यही भूमिका पूरी की थी। सामंती पिंजड़े में बंद मानव-जीवन की मुक्ति के लिए उसने वर्ण और धर्म के सींकचों पर प्रहार किए थे। कश्मीरी ललद्यद, पंजाबी नानक, हिंदी सूर-तुलसी-मीरा-कबीर, बंगाली चंडीदास, तमिल तिरुवल्लुवर आदि-आदि गायकों ने आगे-पीछे समूचे भारत में उस जीर्ण मानव-संबंधों के पिंजड़े को झकझोर दिया था। इन गायकों की वाणी ने पीड़ित जनता के मर्म को स्पर्श कर उसे नए जीवन के लिए बटोरा, उसे आशा दी, उसे संगठित किया और जहाँ-तहाँ जीवन को बदलने के लिए संघर्ष के लिए आमंत्रित भी किया।

17वीं और 20वीं सदी में बंगाली रवींद्रनाथ, हिंदी भारतेंदु, तेलुगु वीरेश लिंगम्, तमिल भारती, मलयाली वल्लतोल आदि-आदि ने अंग्रेज़ी राज और सामंती अवशेषों के पिंजड़े पर फिर प्रहार किया। एक बार फिर उन्होंने भारत की दुखी पराधीन जनता को बटोरा, उसे संगठित किया, उसकी मनोवृत्ति बदली, उसे सुखी स्वाधीन जीवन की तरफ़ बढ़ने के लिए उत्साहित किया।

साहित्य का पांचजन्य समर भूमि में उदासीनता का राग नहीं सुनाता। वह मनुष्य को भाग्य के आसरे बैठने और पिंजड़े में पंख फड़फड़ाने की प्रेरणा नहीं देता। इस तरह की प्रेरणा देने वालों के वह पंख कतर देता है। वह कायरों और पराभव-प्रेमियों को ललकारता हुआ एक बार उन्हें भी समरभूमि में उतरने के लिए बुलावा देता है। कहा भी है—"क्लीबानां धाष्ट्र्यजननमुत्साहः शूरमानिनाम्।" भरत मुनि

© NCERT not to be republished

से लेकर भारतेंदु तक चली आती हुई हमारे साहित्य की यह गौरवशाली परंपरा है। इसके सामने निरुद्देश्य कला, विकृति काम-वासनाएँ, अहंकार और व्यक्तिवाद, निराशा और पराजय के 'सिद्धांत' वैसे ही नहीं ठहरते जैसे सूर्य के सामने अंधकार।

अभी भी मानव-संबंधों के पिंजड़े में भारतीय जीवन विहग बंदी है। मुक्त गगन में उड़ान भरने के लिए वह व्याकुल है। लेकिन आज भारतीय जनजीवन संगठित प्रहार करके एक के बाद एक पिंजड़े की तीलियाँ तोड़ रहा है। धिक्कार है उन्हें जो तीलियाँ तोड़ने के बदले उन्हें मज़बूत कर रहे हैं, जो भारतभूमि में जन्म लेकर और साहित्यकार होने का दंभ करके मानव मुक्ति के गीत गाकर भारतीय जन को पराधीनता और पराभव का पाठ पढ़ाते हैं। ये द्रष्टा नहीं हैं, इनकी आँखें अतीत की ओर हैं। ये स्रष्टा नहीं हैं, इनके दर्पण में इन्हीं की अहंवादी विकृतियाँ दिखाई देती हैं। लेकिन जिन्हें इस देश की धरती से प्यार है, इस धरती पर बसनेवालों से स्नेह है, जो साहित्य की युगांतरकारी भूमिका समझते हैं, वे आगे बढ़ रहे हैं। उनका साहित्य जनता का रोष और असंतोष प्रकट करता है, उसे आत्मविश्वास और दृढ़ता देता है, उनकी रुचि जनता की रुचि से मेल खाती है और कवि उसे बताता है कि इस विश्व को किसी दिशा में परिवर्तित करना है।

प्रजापति की अपनी भूमिका भूलकर कवि दर्पण दिखाने वाला ही रह जाता है। वह ऐसा नकलची बन जाता है जिसकी अपनी कोई असलियत न हो। कवि का व्यक्तित्व पूरे वेग से तभी निखरता है जब वह समर्थ रूप से परिवर्तन चाहने वाली जनता के आगे कवि-पुरोहित की तरह बढ़ता है। इसी परंपरा को अपनाने से हिंदी साहित्य उन्नत और समृद्ध होकर हमारे जातीय सम्मान की रक्षा कर सकेगा।

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक ने कवि की तुलना प्रजापति से क्यों की है?
2. 'साहित्य समाज का दर्पण है'–इस प्रचलित धारणा के विरोध में लेखक ने क्या तर्क दिए हैं?
3. दुर्लभ गुणों को एक ही पात्र में दिखाने के पीछे कवि का क्या उद्देश्य है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. 'साहित्य थके हुए मनुष्य के लिए विश्रांति ही नहीं है, वह उसे आगे बढ़ने के लिए उत्साहित भी करता है'–स्पष्ट कीजिए।
5. 'मानव संबंधों से परे साहित्य नहीं है'–कथन की समीक्षा कीजिए।
6. पंद्रहवी-सोलहवीं सदी में हिंदी–साहित्य ने मानव जीवन के विकास में क्या भूमिका निभाई?
7. साहित्य के 'पांचजन्य' से लेखक का क्या तात्पर्य है? 'साहित्य का पांचजन्य' मनुष्य को क्या प्रेरणा देता है?

© NCERT not to be republished

8. ‘साहित्यकार के लिए स्रष्टा और द्रष्टा होना अत्यंत अनिवार्य है—क्यों और कैसे?
9. ‘कवि-पुरोहित’ के रूप में साहित्यकार की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
10. सप्रसंग व्याख्या कीजिए—
    (क) ‘कवि की यह सृष्टि निराधार नहीं होती। हम उसमें अपनी ज्यों की त्यों आकृति भले ही न देखें पर ऐसी आकृति ज़रूर देखते हैं जैसी हमें प्रिय है, जैसी आकृति हम बनाना चाहते हैं।’
    (ख) ‘प्रजापति-कवि गंभीर यथार्थवादी होता है, ऐसा यथार्थवादी जिसके पाँव वर्तमान की धरती पर हैं और आँखें भविष्य के क्षितिज पर लगी हुई हैं।’
    (ग) ‘इसके सामने निरुद्देश्य कला, विकृति काम-वासनाएँ, अहंकार और व्यक्तिवाद, निराशा और पराजय के ‘सिद्धांत’ वैसे ही नहीं ठहरते जैसे सूर्य के सामने अंधकार।’

भाषा-शिल्प

1. पाठ में प्रतिबिंब-प्रतिबिंबित जैसे शब्दों पर ध्यान दीजिए। इस तरह के दस शब्दों की सूची बनाइए।
2. पाठ में ‘साहित्य के स्वरूप’ पर आए वाक्यों को छाँटकर लिखिए।
3. इन पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट कीजिए-
    (क) कवि की सृष्टि निराधार नहीं होती।
    (ख) कवि गंभीर यथार्थवादी होता है।
    (ग) धिक्कार है उन्हें जो तीलियाँ तोड़ने के बदले उन्हें मजबूत कर रहे हैं।

योग्यता-विस्तार

1. ‘साहित्य और समाज’ पर चर्चा कीजिए।
2. ‘साहित्य मात्र समाज का दर्पण नहीं है’ विषय पर कक्षा में वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

नकल-नवीस	–	नकल करने वाले
पार्श्व	–	बगल, बाजू
क्षुब्ध	–	खिन्न, क्षोभयुक्त, अशांत
जीर्ण	–	पुराना, जर्जर
पांचजन्य	–	श्रीकृष्ण के शंख का नाम
दृढ़व्रत	–	दृढ़प्रतिज्ञ
विश्रांति	–	आराम
रुद्धस्वर	–	रुकी हुई आवाज़
सींकचा	–	बंधन, कैद
सुघर	–	सुघड़, सुंदर
पंख कतरना	–	नियंत्रित करना

© NCERT not to be republished